सामाजिक न्याय | सीखने का केन्द्र

रागिनी ललित

कक्षा के भीतर भावनाएँ अक्सर एक अवरोध के रूप में देखी जाती हैं, जिन्हें या तो हाशिए पर ढकेल दिया जाता है या प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जाता है, ताकि सीखने-सिखाने के वास्तविक काम की ओर बढ़ा जा सके। वस्तुनिष्ठता और तर्क की बयानबाज़ी में भावनाएँ निचले स्थान पर चली जाती हैं और अक्सर 'ग़लत' निर्णय के लिए ज़िम्मेदार मानी जाती हैं। भावनाओं को कमतर करने का अर्थ है कि एक पारम्परिक कक्षा में अन्य की अपेक्षा कुछ ख़ास तरह के लक्षणों की ही सराहना की जाती है, जैसे कि सत्ता के प्रति आज्ञाकारिता या जैसे एक 'अच्छा व्यवहार' करने वाली ख़ामोश कक्षा एक आदर्श कक्षा समझी जाती है। फिर भी, हमारे दैनिक जीवन और कामकाज में हमें पता चलता है कि एक व्यक्ति की भावनाएँ न तो वैयक्तिक, विशिष्ट होती हैं न ही हमारे लिए कोई अनूठे अनुभव होती हैं और न ही वे तुच्छ होती हैं। विनन, वोर्शाम एवं अन्य विद्वानों के काम हमें यह पड़ताल करने के लिए बाध्य करते हैं कि भावनाएँ कैसे 'सामाजिक संरचनाओं और विश्वास प्रणालियों, अतीत और वर्तमान के लिए समाविष्ट सीखने के अनुभव' से जोड़ती हैं।' (विनन्स, 2012)

अगर हम विद्यार्थी जीवन के अपने अनुभवों को पलटकर देखें तो शायद हम यह पाएँगे कि हम क्या सीखते हैं, यह हम कैसे सीखते हैं, के अनुभव से गहरे जुड़ा हुआ होता है। ख़ासतौर पर ऐसी कक्षाओं में जहाँ मत विभिन्नता, सत्ता, 'अन्यत्व'(other hood) अथवा विशेषाधिकार पर चर्चा होती है, जहाँ विवादों के प्रति गहरी धँसी हुई धारणाओं और पूर्वानुमानों को चुनौती दी जा सकती है, तब वहाँ मज़बूत भावनाएँ जागृत होती हैं। ऐसा शायद इसलिए होता है क्योंकि विद्यार्थियों से व्यक्तिगत मुद्दे की पड़ताल करने को कहा जाता है और वह उनके जीवन के अनुभव और विश्वासों से इतना मूलभूत रूप से जुड़ा होता है कि उसे सवालों से परे समझा जाता है।

उदाहरण के लिए, हम 8-10 साल के बच्चों के साथ *इस्मत की ईद* (तूलिका बुक्स द्वारा प्रकाशित एक लोककथा जिसमें त्रासद-कॉमिक घटनाएँ घटित होती हैं) पढ़ते हुए बातचीत कर रहे थे। एक विद्यार्थी ने कहानी के पात्रों की तुलना उन 'पाकिस्तानियों से की जो इन दिनों चर्चा में हैं', 'जो परेशानी पैदा करते हैं', और 'जो बुर्क़ा पहनते हैं'। अपने मज़बूत विश्वास और उस समय ख़बरों में छाए कर्नाटक के स्कूलों में हिजाब प्रतिबन्ध की घटना के विषय पर अत्यन्त भावनात्मक निर्णय के कारण वह विद्यार्थी किसी अन्य सवालों के साथ जुड़ नहीं पा रहा था। इस तरह के सवाल जैसे कि 'तुम्हें कैसे लगता है कि वे पाकिस्तानी हैं? तुमने अपने जीवन में कभी किसी को हिजाब पहने देखा है?' इस आठ वर्षीय बच्चे के लिए थोड़ी-सी भी चुनौती देने पर एक 'अन्य' के प्रति उसके भावनात्मक रुख की निश्चतता बहुत मज़बूत रूप से सामने आई। समय के साथ, बहुत सावधानीपूर्वक पढ़ाई का सत्र व चर्चाओं को संचालित करते हुए शिक्षक एक समुदाय विशेष के प्रति कुछ बच्चों में धँसे इस 'अन्यत्व' के भाव के इर्द-गिर्द संवाद करने की कुछ जगह बना सके। यह स्पष्ट था कि कैसे भावनाओं को सामाजिक और ऐतिहासिक रूप से गढ़ा जाता है, उन्हें अमली जामा पहनाया जाता है और बेहद जटिल तरीक़े से उसे किसी के निर्णयों और विचारों के साथ बुना जाता है।

असुविधा को सम्बोधित करना

एक शिक्षक के रूप में हम एक सामाजिक-राजनीतिक व्यक्ति के रूप में अपनी भूमिका को देख सकते हैं। उम्मीद करते हैं कि हम विद्यार्थियों के लिए ऐसे अवसर और जगह बना पाएँगे जिससे वे मौखिक और लिखित भाषा में, अन्यायपूर्ण कार्यों और वर्तमान और अतीत की अनुचित नीतियों और इसके साथ ही पाठों पर सवाल खड़े कर सकेंगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए, हमारी कक्षाएँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इन मूल्यों को अपनाती हैं। जैसे समूह में एक-दूसरे का परस्पर सम्मान करना और सभी की राय को जगह देना, अपने उत्तरों में असहमतियों का सम्मान करना और संवाद करते हुए एक ऐसी जगह बनाना। लेकिन इस प्रकार के विचार और कार्य से भरी कक्षा में, एक सवाल अक्सर उठता है। सवाल है कि सभी सीखने-सिखाने वाले समुदाय के सदस्यों की देखभाल और ख़ुशहाली को केन्द्र में रखते हुए, हम सत्ता संरचनाओं और प्रमुख सांस्कृतिक धारणाओं द्वारा किए गए विश्लेषण से जुड़ी बातों से उत्पन्न बेचैनी से कैसे निपटेंगे?

उदाहरण के लिए, जब हम छोटे विद्यार्थियों से जेंडर पर बात करते हैं तो उस वक़्त यह अपरिहार्य है कि नियम क़ानूनों और रूढ़िबद्ध मान्यताओं से सम्बन्धित विवाद उपजेंगे। हम पितृसत्ता की उस विशाल संरचना पर भी बात करेंगे, जिससे

सभी घिरे रहते हैं। कुछ लोग इस तरह के विचार रखेंगे कि 'लड़के लड़कियों से ज़्यादा मज़बूत होते हैं।' अथवा फलाँ विशिष्टता 'ज़नाना' है या 'मर्दाना' है। इस विचार के साथ भी संघर्ष हो सकता है कि जिसे पूरी कक्षा 'लड़की' समझता है, लेकिन वह ख़ुद को ऐसा नहीं समझता/ समझती हो। छोटी कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों से बातचीत करते समय इस विषय में काफ़ी कठिनाई हो सकती है। जैसा कि हम जानते हैं कि इस विषय में चर्चा करने और अभिव्यक्त करने का कौशल और योग्यता अभी भी विकसित हो रही है। और इस सन्दर्भ में दुनियावी ज्ञान (जो किसी ने बहुत आसानी से अनुभव किया होगा उससे अलग हो सकता है) का प्रतिरोध करने में बहुत अधिक असुविधाजनक भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस असुविधाजनक चीज़ को कैसे सम्बोधित कर सकते हैं जबकि हम अभी भी परवाह, प्यार और समता के आधार पर वैश्विक दृष्टिकोण बना रहे हैं?

9 से 14 साल की उम्र के एक समूह के साथ भाषा की कक्षाओं में पढ़ाते हुए मैंने ध्यान दिया कि अँग्रेज़ी की भाषा में व्यक्तिगत सर्वनामों (I, you, He, She, they etc) के विचार के इर्द-गिर्द हमारी बहुत-सी बातचीत उन संवादों के माध्यम से हुई जिनका उपयोग हम विभिन्न जगहों पर अपने रोज़ाना के जीवन में बहुत व्यक्तिगत रूप से करते हैं। हमारे समूह में कुछ ऐसे लोग थे जिनकी अपनी बस्ती में (जहाँ सुरक्षित स्थान पाना मुश्किल हो सकता है) और कक्षा में (जहाँ किसी के प्रति धारणा या राय बनने के मौके कम थे और वे अपने को व्यक्त कर सकते थे) अलग-अलग जेंडर पहचान थी। और कुछ ऐसे लोग भी थे जो अपनी जेंडर पहचान की परिवर्तनशीलता पर विचार कर सकते थे और यह भी देख सकते थे कि उनकी यह जेंडर पहचान किस हद तक सामाजिक रूप से निर्मित है। एक ऐसी कक्षा संस्कृति को निर्मित करने के लिए कुछ कहानियों ने हमारी बहुत मदद की, जहाँ भ्रमों का स्वागत किया जाता है, 'घबराहट' को सामूहिक रूप से सहारा दिया जाता है और जहाँ 'अस्त-व्यस्तता' स्वीकृत है। मैंने पाया *Guthli can Fly* (मुस्कान, 2019), *नवाब से नन्दिनी* (निरन्तर, 2006), *The Unboy Boy* (Pickleyolk Books, 2013), *अजूबा* (एकलव्य, 2018) जैसी समृद्ध और संवेदनशील कहानियों ने हमें ऐसे चरित्रों से मिलाया जो रूढ़िबद्ध मान्यताओं से टकराते हैं और अपने भीतर के सत्य को पा लेने से ख़ुश हैं। अपनी पहचान को लगातार घोषित करते हुए और अपनी भावनाओं के साथ बैठते हुए मैंने ध्यान दिया कि कुछ हफ़्तों के बाद समूह ख़ुद ही यह खोज लेते हैं कि उन्हें एक-दूसरे के लिए कौन-सा सर्वनाम इस्तेमाल करना है। कक्षा के बाहर भी वे एक-दूसरे को अपने जन्म/ वैधानिक नाम की जगह अपने चुने हुए नाम अथवा पसन्दीदा नाम से बुलाते हैं। उदाहरण के लिए, एक बच्ची जिसका नाम पूजा था, वह अपने लिए एक अलग जेंडर पहचान वाला नाम, अमन नाम चुन सकती थी।

अक्सर, सत्ता संरचनाओं के विश्लेषण का प्रतिरोध और कक्षा में प्रभुत्व वाले सांस्कृतिक विश्वासों को ख़त्म करने से मान्यता और देखभाल के लिए एक जटिल संकेत जाता है। परिणामस्वरूप वे स्वयं को ख़तरे में महसूस करते हैं। मेगन बोलर जैसे विद्वान अपने काम *'असुविधा का शिक्षणशास्त्र'* में यह मानते हैं कि करुणा और उम्मीद इसके महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। असुविधा का शिक्षणशास्त्र 'बहुत गहराई से जुड़े भावनात्मक आयामों को चिन्हित करता है और उन पर प्रश्न करता है जो दैनिक आदतों, दिनचर्या और पदानुक्रम से अचेत सहभागिता को आकार देते हैं।' (बोलर, 2004, पृ-118)।

ऐसा करते हुए यह न केवल प्रभुत्व समूह के सदस्यों बल्कि हाशियाकृत संस्कृतियों को आमंत्रित करते हैं कि वे अपरिहार्य रूप से अन्तर्निहित प्रभुत्व वाले मूल्यों का पुनर्परीक्षण करें। अगर असुविधा के शिक्षणशास्त्र से किसी के वैश्विक दृष्टिकोण को छीन लिया जाता है (आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र के अनुसार टूटना और बिखरना आवश्यक है) तो करुणा में उस रिक्ति को कुछ नए से भरने की सम्भावना होती है। इस प्रकार, 'करुणा उन लोगों के बीच एक पुल है जो असुविधा के शिक्षणशास्त्र से पीड़ित हैं और जिन्होंने अपूर्णताओं से भरी दुनिया में पूरी तरह जीवित रहने के नए तरीकों को आमंत्रित किया है।' (बोलर, 2004, पृष्ट 129) इस पुल को बनाना शिक्षक के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण होना चाहिए जितना मौजूदा वास्तविकताओं पर आलोचनात्मक सवाल उठाना।

करुणा और उम्मीद

करुणा एक नई और अधिक समतामूलक और उम्मीद पर स्थापित न्याय संगत दुनिया की कल्पना के दरवाज़े भी खोलती है। अगर सीखने वाला समुदाय (कक्षा) सामूहिक रूप से और अपनी इच्छा से यह ढूँढ़ता है कि उनका विशेषाधिकार दूसरों की आज़ादी (या जिसे वे सत्ता की स्थिर और अपरिहार्य संरचना मानते हैं वह वास्तव में ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से निर्मित है) की क़ीमत पर मिलता है, तब उम्मीद जगती है कि सामूहिक कार्रवाइयों के ज़रिए बदले हुए और साझे भविष्य की सम्भावना हमें इस तरह मदद कर सकती है कि हम सनक और आलोचना से परे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए हमारी कक्षा के विद्यार्थियों के परिवारों को, जो दिल्ली-हरियाणा की सीमा पर स्थित हैं, बेदख़ली के नोटिस से डराया जाता है। उस वक़्त वे अपने परिवार, अपने समुदाय और आज की इस बस्ती के बनने के इतिहास का दस्तावेज़ीकरण करने की प्रक्रिया में थे, उस वक़्त ज़्यादातर विद्यार्थी भयावह लगने वाले और अडिग सत्ता की संरचना के ख़िलाफ़ उम्मीद का

स्वर पाते हैं। इस तरह 'आलोचनात्मक उम्मीद' ही वह चीज़ है जो महज़ अच्छे दिनों का स्वप्न देखने से आगे जाकर सचेत तरीक़े से यह सोचना सिखाती है कि उस सामूहिक कार्रवाई के लिए कैसे काम किया जाए। (Freire et al, 2021)

ज़िम्मेदारियों की यह रूपरेखा हमें उस सामाजिक रिश्तों के जाल में एक स्थान प्रदान करती है, जहाँ हमारी कार्रवाइयों का एक मतलब होता है और उसके परिणाम होते हैं। इस तरह की उम्मीद कोई मासूम उम्मीद नहीं होती। इस उम्मीद का यह मतलब नहीं होता कि हम बिना सोचे-विचारे आशान्वित होते हैं या मामूली चीज़ों में भरोसा करते हैं या यह रटते रहते हैं कि 'सिर्फ़ कड़ी मेहनत ही सफलता दिला सकती है' या यह कह रहे होते हैं कि 'मेरे जैसे लोगों का यही नसीब है।' इसकी बजाय, हम दूसरों के साथ संवाद में जाते हुए वर्तमान को बदलने का प्रयास करते हैं। अन्यायपूर्ण परिस्थितियों को दूसरे सम्भावित भविष्य में बदलने का प्रयास करते हैं। उम्मीद कक्षा में एक-दूसरे में और साझे भविष्य में व्यक्तिगत तथा सामूहिक तौर पर बेहतरी का हिस्सा है। इस तरह से शिक्षा जो कि ताक़त देती है और मुक्त करती है, अपने मूल में उपचार भी करती है और परवाह और करुणा से हमें धारण भी करती है।

कुछ महीनों पहले बस्ती का 6 से 10 साल के बच्चों का एक समूह गणपति विसर्जन के एक जुलूस में शामिल होने के लिए काफ़ी उत्साहित था और सड़क पर लाउडस्पीकर के पीछे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। तभी उनके शिक्षक ने उनसे पूछा कि क्या वे गणपति विसर्जन का इतिहास जानते हैं? इसके परिणामस्वरूप जाति पहचान के आधार पर धार्मिक व्यवहारों पर चर्चा हुई – जैसे कुछ लोगों को देवताओं की मूर्तियों को छूने पर पाबन्दी क्यों है? और अन्त में इस सवाल पर चर्चा हुई कि यह धर्म आख़िर में किसका है। प्रभुत्व की व्यवस्था की पड़ताल करने की इस भावनात्मक इच्छा के साथ प्रत्येक के वैश्विक दृष्टिकोण को बदलने के कठिन काम में भी लगने के लिए शिक्षक की यह ज़िम्मेदारी है कि वह विद्यार्थियों के बीच संवाद और विश्वास क़ायम करे। कक्षा में उम्मीद, और ठोस रूप में कहें तो आलोचनात्मक उम्मीद, हमें यह याद दिलाती है कि आलोचनात्मक होना और करुणाशील होना साथ-साथ ही चलता है।

निष्कर्ष

कक्षा में सामाजिक न्याय के विचारों, आलोचनात्मक उम्मीद, करुणा के प्रति एक सामान्य प्रतिक्रिया से बच्चों को सुरक्षित करने की एक चाहत होती है। यह 'मासूमियत' या 'भोलेपन' के रूप में बचपन के बारे में एक प्रमुख धारणा से आती है। इसी तरह, एक वयस्क के रूप में हमारी यही अवधारणा होती है जब हम बच्चों के साहित्य या बच्चों की फ़िल्म के बारे में चर्चा करते हैं या जब हम 'बच्चे-हितैषी' के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं। बच्चों के बारे में समझी गई मासूमियत को किसी भी तरह की विषयगतता की कमी की अवधारणा के रूप में चिन्हित किया जाता है।

बच्चों की किताबों को अक्सर इस तरह देखा जाता है कि वे बहुत 'साधारण' हों, बच्चों के कोरे मस्तिष्क के लिए एक रैखिक आख्यान हों जिसे हिंसा, गाली-गलौज या किसी भी तरह के संरचनात्मक संघर्ष से बचाया जाना चाहिए। वयस्क द्वारा लिखे गए बच्चों के साहित्य में नैतिक शिक्षा की ध्वनि बहुत आम होती है। फिर भी, बच्चों के पास संघर्षों का अनुभव होता है और वे हमारे साथ रोज़ाना के जीवन के सभी बदसूरत और ख़ूबसूरत पलों में जीते हैं। बच्चों का अनुभव एक समान और सामान्य होने की बजाय प्रायः गहरे रूप में राजनीतिक होता है। इस आशा में कि बच्चों को कुछ ख़ास यथार्थ से बचाया जाए प्राथमिक स्कूलों में हमारा प्रयास यह रहता है कि हम बच्चों से कठिन वार्तालाप को नज़रअन्दाज़ करें। हालाँकि यह रुख ख़ासतौर से उस समय दिशाभ्रमित हो सकता है, जब हम हाशिए के समुदायों से आने वाले विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हैं, जिनका जीवन दमन के ख़िलाफ़ संघर्षों की एक निरन्तरता ही होता है। इन विद्यार्थियों की ज़रूरत वास्तविक ज़िन्दगी से भागने की नहीं होनी चाहिए जहाँ वे अपनी भौतिक परिस्थितियों को न बदल सकें बल्कि उस यथार्थ को पहचानने की होनी चाहिए जो उनके सामने खड़ी है और उन हथियारों को समझने की होनी चाहिए जिसका इस्तेमाल करके वे एक अलग भविष्य की ओर बढ़ सकें। इस तरह करुणा और आलोचनात्मक उम्मीद, उस वैश्विक दृष्टिकोण को तोड़ने, जिसकी आलोचनात्मक शिक्षा हमसे माँग करती है और प्यार, न्याय, समता और संवाद की बुनियाद पर आधारित सम्भावित भविष्य को गढ़ने के बीच एक पुल का काम करती है।

References

Boler, M. (2004). Teaching for Hope: The Ethics of Shattering World Views. In Teaching, Learning and Loving Reclaiming Passion in Educational Practice (pp. 114–129). Routledge Falmer

Freire, P. Freire, A M A, Barr, R R, & Giroux, H.A (2021). Pedagogy of Hope: Reliving Pedagogy of the Oppressed

Hooks, Bell. (2003). Teaching Community: A Pedagogy of Hope. Routledge

Winans, A E (2012). Cultivating Critical Emotional Literacy: Cognitive and Contemplative Approaches to Engaging Difference. College English, Volume 75, No. 2, (pp. 150–170). National Council of Teachers of English



रागिनी ललित की रुचि बच्चों और युवाओं के लिए उम्मीद और करुणा पर टिके आलोचनात्मक शिक्षण की जगह को निर्मित करने के लिए अन्वेषण करने में है। वह विशेष तौर पर शिक्षा में बच्चों के साहित्य और प्रस्तुति कला के इस्तेमाल में रुचि रखती हैं। वह इस समय अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय बेंगलूरु में 'इंटरेस्ट ग्रुप फॉर डायलॉग फर्टीनिटी एंड जस्टिस' में रिसर्च एसोसिएट के रूप में काम कर रही हैं। उनसे *ragini.lalit06@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : मनीष आज़ाद **पुनरीक्षण :** जितेन्द्र 'जीत' **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय